International Journal of Applied Research 2014; 1(1): 321-323

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 321-323
www.allresearchjournal.com
Received: 18-10-2014
Accepted: 20-11-2014

डॉ. अशोक कुमार गुप्ता
व्याख्याता–हिन्दी
एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अशोक कुमार गुप्ता
व्याख्याता–हिन्दी
एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान, भारत

आधुनिक साहित्य में संस्कृति के स्वर

डॉ. अशोक कुमार गुप्ता

सारांश
आधुनिक साहित्य में भावों की विविधता है। इसमें एक ओर प्रेम और संस्कृति की झलक है तो दूसरी ओर घुटन, अकेलापन और संत्रास है। भारतेन्दु युग से अब तक लिखे जाने वाले भारतीय साहित्य में भारतीय संस्कृति के स्वर अत्यधिक मुखरित हूए हैं। इससे पूर्व भी वैश्विक पटल पर हमारी संस्कृति को खूब सराहा गया है। यह संस्कृति अनेक झंझावतों से थपेड़े खाकर भी अक्षुण्ण रही है क्योंकि इसके अपने सिद्धांत, विचार तथा मूल्य हैं। इसका सबसे प्रवल पक्ष अध्यात्म है जिसे ऋषि–मुनियों, विचारकों एवं साहित्यकारों ने सदैव पुष्ट किया है। भारतेन्दु, द्विवेदी, प्रसाद, प्रेमचंद युगीन साहित्यकारों ने संस्कृति के विविध स्वरों का चित्रण किया है। इस संबंध में भारतेन्दु का निबंध 'वैष्णवता और भारतवर्ष' सरदार पूर्णसिंह का 'आचरण की सभ्यता' जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद का अधिकांश साहित्य, रामधारी सिंह दिनकर का 'संस्कृति के चार अध्याय' आदि उल्लेखनीय हैं। वर्तमान में रामदरश मिश्र, मिथलेश्वर, असगर वजाहत, हिमांशु जोशी, भरत शर्मा 'भारत', सुशील मोहिनी वर्मा, गोपाल बाबू शर्मा, विक्रमसिंह, राजस्थान पत्रिका समूह के प्रधान संपादक गुलाब कोठारी आदि उल्लेखनीय साहित्यकार हैं जो कमोवेश संस्कृति की रक्षा हेतु साहित्य सृजन कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि हमारी संस्कृति आज भी विश्व की संस्कृतियों से श्रेष्ठ है।

मुख्य शब्दः संस्कृति, स्वर, प्रेम

प्रस्तावना
हिन्दी साहित्य विविध विषयों का विपुल भण्डार है। इसमें रचनाकारों ने भक्ति, नीति, शृंगार, राष्ट्रीयता, प्रेम और संस्कृति विषयक तत्वों को प्रमुखता दी है। यद्यपि साहित्य के काल–विभाजन पर दृष्टि डालें तो आदिकाल में वीर, भक्तिकाल में भक्ति, रीतिकाल में शृंगार परक रचनाँए दृष्टिगत होती हैं। वहीं आधुनिक काल जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इसमें किसी एक तत्व की प्रधानता नहीं है। इस काल में काव्य विधा के साथ–साथ गद्य की विविध विधाओं में साहित्य सृजन होने लगा। आधुनिक साहित्य में एक ओर प्रेम और संस्कृति की झलक है तो दूसरी ओर घुटन, एकलापन और संत्रास है। यद्यपि आधुनिक साहित्य में भारतेन्दु युग से अब तक लिखे जाने वाले साहित्य में भारतीय संस्कृति के स्वर को खूब मुखरित हुए हैं। इससे पूर्व भी वैश्विक पटल पर हमारी संस्कृति को खूब सराहा गया है। यह संस्कृति विश्व की एकमात्र ऐसी संस्कृति रही है जो समय के झंझावतों से थपेड़े खाकर सदैव अक्षुण्ण है। अनेक संस्कृतियाँ जहाँ पल्लवित–पुष्पित हुयी वह एक चरम बिन्दु पर पहुँचने के बाद काल–कवलित हो गईं। संस्कृति के उत्कर्ष व चिरन्तनता के कुछ मूल तत्व होते हैं। सभी संस्कृति व समाज का जीवन को देखने एवं जीने का एक अलग दृष्टिकोण होता है। लेकिन हमारी संस्कृति वैश्विक दृष्टिकोण के सिद्धान्तों, विचारों व मूल्यों पर आधारित होने के कारण सार्वकालिक रही है। भारतीय संस्कृति का सबसे सबल पक्ष आध्यात्म रहा है जिसे ऋषि–मुनियों, विचारकों, साहित्यकारों ने पुष्ट किया। इसके प्रमाण स्वरूप वेद, उपनिषद, शास्त्र, गीता, रामचरितमानस आदि ग्रन्थ साहित्य जगत में आज भी विद्यमान हैं।

साहित्यकारों ने भारतीय संस्कृति के मूल्यों को अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है जो सर्वमान्य एवं सार्वकालिक एवं विश्वव्यापी है। ये सांस्कृतिक–मूल्य मनुष्य के जीवन निर्माण एवं चरित्र निर्माण में सदैव सहायक रहे हैं। भारतीय संस्कृति में जीवन के इन मूल्यों को 'धर्म' कहा जाता रहा। 'धारयति इति धर्मः' अर्थात् धर्म वही है जो धारण करने योग्य है। इस धर्म के अन्तर्गत धैर्य, क्षमा, संयम, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अक्रोध का स्थान है तो इनके साथ–साथ सत्य, अहिंसा, शांति, चरित्र, प्रेम, समन्वय, वसुधैव कुटुम्बकम, प्रकृति प्रेम, पुण्य, परोपकार, त्याग, अतिथि सत्कार, परदुःखकारता, विनय, शील, कर्तव्य पालन, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि को भी स्थान प्राप्त है। इन मूल्यों की स्थापना से ही हमारा भारत देश 'विश्व गुरु' रहा है। यहाँ के साहित्यकारों ने सदैव विश्व कल्याण की कामना की है :–

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।/सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।''

सबके कल्याण का भाव विश्व के अन्य साहित्य में देखने को नहीं मिलता। लेकिन हमारा साहित्य जनकल्याण, परोपकार एवं परदुःखकातरता से सदैव ओतप्रोत रहा है। संस्कृत में यह उक्ति द्रष्टव्य है

''अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम।/परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।'' इसी सन्दर्भ में महाकवि तुलसीदास लिखते हैं ''पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।''

अस्तु, दार्शनिकों, चिन्तकों, साहित्यकारों ने हमारी संस्कृति को अक्षुण्ण ही नहीं रखा बल्कि विश्व में इसका खूब, प्रचार–प्रसार भी किया। हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों की सदैव रक्षा होती रही है। यद्यपि वर्तमान साहित्य में पाश्चात्य प्रभाव हमारी संस्कृति को प्रभावित कर रहा है लेकिन इससे डरने की कतई आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारी संस्कृति अमिट तथा अक्षुण्ण है।

भारतेन्दु युग में लिखे गये साहित्य में संस्कृति के अनेक स्वर मुखरित होते हैं। स्वयं भारतेन्दु 'वैष्णवता और भारतवर्ष' निबन्ध में लिखते हैं–''जब पेट भर खाने ही को न मिलैगा तो धर्म वहाँ बाकी रहैगा, इससे जीवमात्र के सहज धर्म उदरपूरण पर अब ध्यान दीजिये। परस्पर का बैर छोड़िए। शैव, शाक्त, सिक्ख जो हो सबसे मिलो। उपासना एक हृदय की रत्न वस्तु है।'' उक्त वक्तव्य में मैत्री भाव के साथ–साथ समन्वय भाव भी दृष्टिगत होता है। इसी निबन्ध में भारतेन्दु हमारी संस्कृति की महत्ता को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं–''वैष्णवमत की प्रवृत्ति भारतवर्ष में स्वाभाविकी है। जगत में उपासना मार्ग ही मुख्य धर्ममार्ग समझा जाता है। कृस्तान, मुसलमान, ब्राह्म, बौद्ध उपासना सबके यहाँ मुख्य है। किन्तु बौद्धों में अनेक सिद्धों की उपासना और तप आदि शुभ कर्मों के प्राधान्य से वह मत हम लोगों के स्मार्त्त मत के सदृश हैं और कृस्तान, ब्राह्म, मुसलमान आदि के धर्म में भक्ति की प्रधानता से ये सब वैष्णवों के सदृश है। इंजील में वैष्णवों के ग्रन्थों से बहुत सा विषय लिया है और ईसा के चरित्र में भी कृष्ण के चरित्र का सादृश्य बहुत है, यह विषय सविस्तार भिन्न प्रबन्ध में लिखा गया है। तो जब ईसाइयों के मत को ही हम वैष्णवों का अनुगामी सिद्ध कर सके हैं, फिर मुसलमान जो कृस्तानों के अनुगामी हैं वे हमारे अन्वनुगामी हो चुके।" उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि हमारी पौराणिक संस्कृति अनेक धर्मों से मेल खाती है। इसीलिए हमारी संस्कृति में 'सर्वधर्म समभाव' का भाव निहित है। उनके पद्य साहित्य में भी संस्कृति के स्वर द्रष्टव्य हैं –

''फूट बैर को दूरि करि, बांधि कमर मजबूत। भारत माता के बनो माता पूत सपूत।''

द्विवेदी युगीन साहित्य में भी संस्कृति के स्वर अनेक स्थानों पर प्रस्फुटित होते हैं। सरदार पूर्णसिंह आचरण की सभ्यता' नामक निबन्ध में प्रेम और एकता का भाव इस प्रकार प्रकट करते हैं – ''आचरण की सभ्यता का देश ही निराला है। उसमें न शारीरिक झगड़े हैं, न मानसिक, न आध्यात्मिक। न उसमें विद्रोह है, न जंग ही का नामोनिशान है और न वहाँ कोई ऊँचा है, न नीचा। न कोई वहाँ धनवान है और न कोई वहाँ निर्धन। वहाँ तो प्रेम और एकता का अखण्ड राज्य रहता है।'' उक्त उदाहरण में समानता, एकता, प्रेम व अखण्डता को आचरण से जोड़कर संस्कृति को परिपुष्ट किया है। द्विवेदी युग के ही बालमुकुन्द गुप्त 'आशीर्वाद' निबन्ध में भारतीय प्रेम को इस प्रकार दर्शाते हैं– ''यदि हमारे ईश्वर में इतनी शक्ति न हो कि वह हमारे राजा और शासकों को हमारे अनुकूल कर सके और उन्हें उदारचित्त और न्यायप्रिय बना सके तो इतना अवश्य करे कि हमें सब प्रकार के दोषों से बचा कर न्याय के लिए जेल काटने की शक्ति दे, जिससे हम समझें कि भारत हमारा है और हम भारत के। इस देश के सिवा हमारा कहीं ठिकाना नहीं। रहें इसी देश में, चाहे जेल में चाहे घर में। जब तक जियें और जब प्राण निकल जायें तो यहीं कि पवित्र मिट्टी में मिल जायें''। यह आत्मसमर्पण भारतीय लोगों में कूट–कूट कर भरा है जो सदैव अन्य लोगों के लिए प्रेरणास्रोत है। द्विवेदी युग के पद्य साहित्य में भी भारतीयता का भाव द्रष्टव्य है – सोहनलाल द्विवेदी लिखते हैं– ''वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो।" छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद तो संस्कृति के पुरोधा रहे हैं। उन्होंने तो अपने सम्पूर्ण साहित्य में संस्कृति को पूर्णतः महत्व दिया है। वे 'कामायनी' के 'आनन्दसर्ग' में लिखते हैं–'हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमीं है/तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है।'' यह बात स्पष्ट है कि कवि सम्पूर्ण पृथ्वी को एक कुटुम्बी मानता है वह कहता है कि हम सब एक हैं। इस तरह 'स्कन्दगुप्त' नाटक में देवसेना और जयमाला के कथोपकथन में हमारी भारतीय संस्कृति की एक झाँकी द्रष्टव्य है –

देवसेना–''भाभी! सर्वात्मा के स्वर में, आत्म–समर्पण के प्रत्येक ताल में अपने विशिष्ट व्यक्तिवाद का विस्मृत हो जाना–एक मनोहर संगीत है। क्षुद्र स्वार्थ, भाभी जाने दो; भैया को देखो–कैसा उदार, कैसा महान् और कितना पवित्र!''

जयमाला–'' देवसेना! समष्टि में भी व्यष्टि रहती है। व्यक्तियों से ही जाति बनती है। विश्व प्रेम, सर्वभूत–हित–कामना परमधर्म है; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि अपने पर प्रेम न हो।'' इसी भाँति जयशंकर प्रसाद त्याग को भी विशेष महत्व देते हैं। वे 'स्कन्दगुप्त' नाटक में स्कन्दगुप्त के माध्यम से कहते हैं – ''संसार में जो सबसे महान है, वह क्या है ? त्याग! त्याग का ही दूसरा नाम महत्व है।'' इसी नाटक में लेखक धातुसेन के माध्यम से भारत कल्याण के लिए भी समर्पित है – ''भारत समग्र विश्व का है, और सम्पूर्ण वसुन्धरा इसके प्रेम–पाश में आबद्ध है। अनादि काल से ज्ञान की, मानवता की ज्योति वह विकीर्ण कर रहा है। वसुन्धरा का हृदय–भारत–किस मूर्ख को प्यारा नहीं है? तुम देखते नहीं कि विश्व का सबसे ऊँचा शृंग इसके सिरहाने और सबसे गम्भीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है? एक–से–एक सुन्दर हृदय प्रकृति ने अपने इस घर में चित्रित कर रक्खा है। भारत के कल्याण के लिए मेरा सर्वस्व अर्पित है।''इतना ही नहीं जयशंकर प्रसाद ने तो एक विदेशी कन्या के माध्यम से भारतीय संस्कृति का गुणगान करवाया। सिल्यूकस की कन्या कार्नेलिया भारतीय संस्कृति का इस प्रकार बखान करती है–

''अरुण यह मधुमय देश हमारा/जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा/सरस तामरस गर्भ विभा पर – नाच रही तरुशिखा मनोहर/छिटका जीवन हरियाली पर – मंगल कुंकुम सारा/लघु सुरधुन से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे/उड़ते खग जिस ओर मुँह किये – समझ नीड़ निज प्यारा/बरसाती आँखों के बादल–बनते जहाँ भरे करुणा जल/लहरें टकराती अनन्त की – पाकर जहाँ किनारा/हेम कुम्भ ले उषा सबेरे – भरती ढुलकाती सुख मेरे/मदिर ऊँघते रहते जब – जग कर रजनी भर तारा।''

'कामायनी' के 'कर्म सर्ग' में मानवतावादी दृष्टिकोण जो 'जीओ और जीने दो' के भाव को व्यक्त करता हुआ एक उदाहरण द्रष्टव्य है–''औरों को हँसते देखो मनु–हँसो और सुख पाओ/अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ!'' परस्पर मेल–मिलाप वाली संस्कृति का भी 'कामायनी' के 'निर्वेद

सर्ग' में इस प्रकार जिक्र करते हैं–''तुमने हँस–हँस मुझे सिखाया विश्व खेल है खेल चलो/तुमने मिलकर मुझे बताया सबसे करते मेल चलो।''

कवि प्रसाद सेवा, परदुःखकातरता का भाव 'अजातशुत्र' नाटक में गौतम मागन्धी को इस प्रकार समझाकर अभिव्यक्त करते हैं – ''विश्व के कल्याण में अग्रसर हो। असंख्य दुखी जीवों को हमारी सेवा की आवश्यकता है। इस दुःख–समुद्र में कूद पड़ो। यदि एक भी रोते हुए हृदय को तुमने हँसा दिया, तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विकसित होंगे। फिर तुमको परदुःखकातरता में ही आनन्द मिलेगा। विश्व मैत्री हो जायेगी। विश्व भर अपना कुटुम्ब दिखायी पड़ेगा। उठो, असंख्य आहें तुम्हारे उद्योग से अट्टहास में परिणत हो सकती है''। इसी भाँति सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन 'पंत' आदि छायावादी लेखकों के साहित्य में इन सांस्कृतिक मूल्यों को देखा जा सकता है। हमारे देश में महाकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकार भी हुए जिन्होंने अपने साहित्य में इन मूल्यों को अधिकाधिक तवज्जो दी है। दिनकर ने तो 'संस्कृति के चार अध्याय' ग्रन्थ लिखकर सांस्कृतिक मूल्यों में अपना अनूठा योगदान दिया। वे लिखते हैं – ''यह ग्रन्थ भारतीय एकता का सैनिक है। ...भारत की संस्कृति, आरम्भ से ही सामासिक रही है। उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम, देश में जहाँ भी जो हिन्दु बसते हैं, उनकी संस्कृति एक है एवं भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी सामासिक संस्कृति की विशेषता है। तब हिन्दु एवं मुसलमान है, जो देखने में अब भी दो लगते हैं किन्तु उनके बीच भी सांस्कृतिक एकता विद्यमान है, जो उनकी भिन्नता को कम करती है।'' दिनकर' भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक हैं। उनके अधिकांश साहित्य में हमारी संस्कृति के स्वर प्रस्फुटित हैं। 'कुरुक्षेत्र' ग्रन्थ में लिखते हैं–

> ''क्रिया–धर्म को छोड़ मनुज, कैसे निज सुख पायेगा? /कर्म रहेगा साथ, भाग वह, जहाँ कहीं जायेगा।''प्रगतिवादी कवि चन्द्रकिरण सोनरिक्सा भी भारतीय संस्कृति के एकता के महत्व को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–'दुनिया के मजदूर भाइयो, सुन लो एक हमारी बात।/सिर्फ एकता में ही बसता, इस दुनिया के सुख का राज।।''

आधुनिक साहित्यकार चाहे कवि हो या कथाकार उन्होंने अपने कथ्य में संस्कृति के विभिन्न तत्वों को उकेरा है। आधुनिक लेखकों में प्रेमचन्द, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी, हरस्वरूप पाठक, रामदरश मिश्र, मिथलेश्वर, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, सुरेन्द्र वर्मा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', कमलेश्वर, प्रभा खेतान, असगर वजाहत आदि ने भारतीय संस्कृति के तत्वों को अपने साहित्य में खूब स्थान दिया है। असगर वजाहत तो भारतीय संस्कृति को समाज की प्राणवायु मानते हैं। उन्होंने व्यापक सांस्कृतिक आधार पर अपने उपन्यासों में भारतीय एकता के तत्वों को रेखांकित किया है। वर्तमान कवियों ने भी अपनी कविताओं में अपनी संस्कृति की रक्षा का आह्वान किया है, इस सन्दर्भ में भरत शर्मा 'भारत' सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए इस प्रकार कृत संकल्प हैं–''अँधियारों के बीच घिरी अब मानवता उजियारी है।/जीवन मूल्यों का संरक्षण नैतिक जिम्मेदारी है।।'' सुशील मोहिनी वर्मा भी संस्कृति की रक्षा का आह्वान इस प्रकार करती दिखायी देती हैं–''जहाँ कहीं हो अनाचार तो, सदाचार चुप रह ना पाये।/संस्कृति की रक्षा के खातिर, सब मिल आओ विगुल बजाएँ।।'

इसी तरह आधुनिक कवियों में डॉ0 गोपाल बाबू शर्मा एवं विक्रम सिंह भी उल्लेखनीय हैं, जिनके काव्य में मानवीयता, परदुःखकातरता आदि सांस्कृतिक भाव समाहित हैं। डॉ0 गोपाल बाबू शर्मा 'समर्पित है मन' काव्य संग्रह में लिखते हैं–''वह मानव क्या जिसने विष जीवन में पिया नहीं है/जिसने सुख को परदुख पर न्यौछावार किया नहीं है।'' इसी तरह विक्रम सिंह 'प्रिटिंग मिस्टेक' काव्य संग्रह में आदमी की आदमियत का उल्लेख इस प्रकार करते हैं– ''किस धर्म को दोगे इसे? जिसका न कोई धर्म है/बालक मरा/अब तक जो बेधर्म है/धर्म से जिसकी नहीं/हो पायेगी पहचान/हिन्दू कहें या मुसलमान/मरा है यह कोई इन्सान/सिर्फ इन्सान।'' यही इन्सानियत हमारी संस्कृति की पहचान है। जाने–माने पत्रिका समूह के प्रधान सम्पादक गुलाब कोठारी भी अपनी कविता 'रे मनवा मेरे!' में अपनी संस्कृति का इस प्रकार स्मरण कराते हैं– ''रे दंभी वन/छोड़कर मान–गुमान/करना बातें अपनी/शेखचिल्ली ज्यों/आ लौट चलें/जहाँ करता बातें/तू/भूलकर खुद को/सदा दूसरे की/न अपेक्षा, और/न ही अहंकार/करके अपना धर्म/भूल जा दूसरे का/जीता रह बन्धन मुक्त/मोक्ष की तरह/''

अतएव यह स्पष्ट है कि आधुनिक साहित्य जिसमें कविता, कहानी' उपन्यास, निबन्ध, नाटक आदि साहित्य की विभिन्न विधाओं में संस्कृति के सभी तत्वों का कमोवेश समावेश है। इन्हीं तत्वों से हमारी संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतियों से श्रेष्ठ है। इसी श्रेष्ठता से विदेशियों ने भी इसे आत्मसात किया है। यही एक ऐसी संस्कृति है जो शाश्वत एवं अमिट है। यह बात इकबाल की निम्नांकित पंक्तियों से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

> ''यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये ज़हाँ से,
> कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
> सदियों रहा है दुश्मन, दौरे ज़हाँ हमारा,
> सारे ज़हाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा।।''

संदर्भ

1. दशवें दशक का हिन्दी साहित्य, सम्पा0, डॉ0 हरिचरण शर्मा एवं डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ।
2. भारतेन्दु के श्रेष्ठ निबन्ध, सम्पादक, सत्यप्रकाश मिश्र
3. निबन्ध संकलन, सम्पादक प्रो0 अखिलानन्द पाठक
4. स्कन्दगुप्त, जयशंकर प्रसाद
5. अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद
6. कामायनी, जयशंकर प्रसाद
7. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह 'दिनकर'
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
9. हिन्दी भाषा ज्ञान, डॉ0 हरिचरण शर्मा
10. गद्यालोक, सम्पादक, डॉ0 अशोक कुमार गुप्ता,
11. साहित्यिक निबन्ध, गणपतिचन्द्र गुप्त
12. रामचरित मानस, तुलसीदास
13. कुरुक्षेत्र, रामधारी सिंह 'दिनकर'
14. युग निर्माण योजना (मासिक), अक्टूबर, 2013
15. राजस्थान पत्रिका, रविवार, 15 दिसम्बर, 2013